COHERENCE – The Multidisciplinary Research Journal
Volume No: 16, Issue No: 2, Year: 2025 (July-December)
PP: 77-81

ISSN: 0976-5301
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 7.85)
Journal Website www.coherencejournal.in

दलितों के जीवन की संघर्ष–गाथा : 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर'

जय प्रकाश कुमार

शोधार्थी

विश्वविद्यालय हिंदी विभाग ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

शोध–सार :–

सदियों से न केवल भारत में बल्कि संपूर्ण विश्व में जाति, वर्ण, रंग, नस्ल आदि के आधार पर भेदभाव, शोषण और उत्पीड़न जारी है। पिछली शताब्दी में विश्व के महान चिंतकों और विचारकों ने ऐसी बर्बर व्यवस्था पर न केवल प्रश्न उठाया बल्कि उसे उखाड़ फेंकने का शंखनाद भी किया। भारत में डॉ. भीमराव अंबेडकर, ज्योतिबा फुले, पेरियार आदि ने जाति व्यवस्था के दमनात्मक चरित्र के खिलाफ हुंकार भरी और बहुजन आबादी को उनके अधिकारों के प्रति सजग किया। उक्त महान चिंतकों ने दलितों को इस बात की जानकारी दी कि सदियों से उनके साथ समाज में गलत होता आया है। तथाकथित ऊंची जातियों के लोगों ने जाति और वर्ण के नाम पर किस प्रकार उनका शोषण किया है। डॉ. अंबेडकर, जगजीवन राम आदि दलित विद्वानों के प्रयासों से दलितों को न केवल आवाज मिली बल्कि उनकी चेतना का भी विकास हुआ। भारत के हर क्षेत्र में दलितों के नेता उभर कर सामने आए और उन्होंने उनकी सामाजिक–आर्थिक मुक्ति के लिए एक लंबी लड़ाई लड़ी। वस्तुतः यह लड़ाई आज भी जारी है क्योंकि विषमता आज भी बरकरार है। वह मानसिकता आज भी ज्यों की त्यों है जिसने हजारों वर्षों तक दलितों को दबाए रखा। वैसे दलित जिन्होंने घनघोर अभावों में भी अकादमिक अध्ययन पूरा किया और जब किसी पद पर आसीन हुए तब उन्होंने अपनी अगली पीढ़ियों को जगाने के उद्देश्य से अपनी आत्मकथाओं की रचना की। स्वाभाविक है इन आत्मकथाओं में न केवल उस व्यक्ति का भोगा हुआ यथार्थ चित्रित हुआ है बल्कि उस पूरे समाज का सच उद्घाटित हुआ है जो सदियों से वंचित, शोषित, उत्पीड़ित और संसाधनविहीन रहा है। हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व विभागाध्यक्ष प्रो. श्यौराज सिंह बेचैन ने भी अपनी आत्मकथा दो खंडों में लिखी है। पहले खंड का शीर्षक 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' है। उक्त आत्मकथा की त्रासद घटनाएं पाठकों को यह सोचने पर मजबूर कर देती हैं कि क्या वास्तव में जिस जिंदगी को जीने के लिए दलित अभिशप्त हैं उसे मनुष्य का जीवन कहा जा सकता है? बेचैन जी ने दलित जीवन के तमाम बिंदुओं पर पूरी मुखरता से प्रकाश डाला है और उनकी त्रासदी को उद्घाटित करने का सार्थक प्रयास किया है।

बीज–शब्द : दलित, अस्मिता, अस्तित्व, शोषण, उत्पीड़न, आंदोलन, ब्राह्मणवाद, प्रगतिशील।

अपने जीवन के आरंभिक दिनों से ही श्यौराज सिंह बेचैन ने ऐसी विद्रूप परिस्थितियों का समान किया जिसकी कल्पना से ही कलेजा सिहर उठता है। दरअसल बेचैनजी ने जो अपने जीवन में भुगता लगभग वैसा ही जीवन गुजारने को हर दलित व्यक्ति अभिशप्त है। 'मुर्दहिया', 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' या कोई भी अन्य दलित आत्मकथा का अनुशीलन करने पर एक तथ्य स्पष्ट रूप से लक्षित होता है कि हर

लेखक ने इस बात को मुक्त कंठ से स्वीकार किया है कि 'अशिक्षा' दलितों की सबसे बड़ी दुश्मन रही है। यह सत्य है कि दलितों को अशिक्षित रखने में तथाकथित सवर्णों का बहुत बड़ा हाथ रहा है लेकिन इस सत्य को भी दरकिनार नहीं किया जा सकता है कि स्वयं दलितों ने भी पढ़ाई के महत्त्व को कभी गंभीरता से नहीं लिया। घोर अशिक्षा ने ही बेचैन जी के पिता की जान जवानी में ही ले ली। उनके पिता को एक विवाह आयोजन में जबरन उनके रिश्तेदारों ने ही बहुत शराब पिला दी थी। उसकी वजह से उनकी हालत गंभीर होती जा रही थी लेकिन रिश्तेदारों ने उनके सम्यक इलाज की जगह अपने अंधविश्वासों पर ही भरोसा किया। बालक श्यौराज ने अपनी आंखों के समक्ष पिता को तड़प–तड़प कर मौत को गले लगाते देखा। उस मार्मिक घटना का वर्णन करते हुए बेचैन जी ने लिखा है– *"मैं जब घर से गया था तो बारात देखने की खुशी में हँसता-खेलता चाचा के कन्धों पर सवार होकर गया था और अब पिता के चले जाने पर लौट रहा था तो मेरा बचपन खुद मेरे ही कन्धों पर आ पड़ा था।"*[1] स्वाभाविक है कि पिता की मृत्यु के बाद बालक बेचैन के कोमल कंधों पर पूरे परिवार की जिम्मेदारी अपने आप ही आ गई थी। कारण यह कि उनके परिवार में पिता के सिवा दूसरा कोई भी कमाऊ नहीं था। बेचैनजी ने आगे घर के अन्य सदस्यों का वर्णन करते हुए लिखा है– *"उन दिनों मेरे घर में कोई भी सदस्य साक्षर नहीं था। परिवार के भरण-पोषण के लिए पौने दो बीघा जमीन थी जिसमें ताऊ का आधा हिस्सा था। उसमें से एक बीघा कल्लर (बंजर) की चपेट में आ चुकी थी। जैसे हमारे घर का एकमात्र कमाऊ व्यक्ति चला गया था, उसी तरह जमीन की उर्वरता भी जा चुकी थी। बाकी पुरुषों में बड़े बब्बा भागीरथ, छोटे बब्बा गंगी और ताऊ बाबूराम तीनों नेत्रहीन थे ही। चौथे सदस्य बचे विधाराम बब्बा चाचा के पिता सो 'फिरक' (वह बैलगाड़ी केवल दो-तीन सवारियों के लिए होती थी।) की दुर्घटना में उनकी एक टाँग टूट चुकी थी। कुल मिला कर, घर असहायों और अपाहिजों से भरा था। अम्माँ के पास शिक्षा या रोजगार का कोई हुनर नहीं था। इस कारण वह किसी दूसरे पुरुष की मदद के बिना हमें पालने में असमर्थ थी। उस समय उसकी उम्र पच्चीस वर्ष से भी कम थी।"*[2] उक्त पंक्तियों में अपने परिवार की जिस दारुण दशा का वर्णन श्यौराजजी ने किया है उसे पढ़ कर जब पाठक किंकर्तव्यविमूढ सी अवस्था में चला जाता है तब जिसने उसका प्रत्यक्ष अनुभव किया हो उसके विषय में क्या कहा जा सकता है। पाँच वर्ष के बालक की दुनिया ही उजड़ चुकी थी। अगर बालक ब्राह्मण या जाट होता तो उसकी सामाजिक हैसियत की वजह से किसी न किसी प्रकार उसका गुजारा चल जाता। परंतु दलित होने के कारण बालक श्यौराज के समक्ष पिता की मृत्यु के बाद अस्तित्व और अस्मिता का संकट खड़ा हो गया। अधिकांश दलित बच्चे इसी प्रकार की मिलती–जुलती त्रासदियों के साथ ही बड़े होते हैं।

अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिए उन्हें विरासत में जो मिला था उसका जिक्र करते हुए वे लिखते हैं– *"उठा सको तो उठाओ बेटा गाँव-भर की मुर्दा मवेशियाँ जो तुम्हारे नाजुक कन्धों का बेताबी से इन्तजार कर रही हैं। भूखे हो तो खाओ मुर्दा मवेशियों का मांस और चाहिए चार आना, आठ आना तो, लम्बरदार की जाकर करो बेगार, हाँको रहटें-दाँयें, उठाओ गोबर और डालो भूसा।"*[3] स्पष्ट है कि अल्पायु में ही बालक श्यौराज ने जिंदगी के सबसे बड़े तूफान को बिल्कुल करीब से महसूस किया था। परिवार का भरन–पोषण करने के लिए श्यौराज जी ने अपनी आयु की परवाह नहीं की। उन्होंने लिखा है

"सींग-पूँछ पकड़ते-पकड़ते आने-दो आने के लालच में लम्बे संगेटे के नीचे कब मेरे खुद के कंधे आ गये, पता ही नहीं चला था। यह मेरी अनौपचारिक ट्रेनिंग हुई।"[4] अंतर्मन तक को कंपित करने देने वाली दलितों की आत्मकथाएं समाज का ऐसा यथार्थ हैं जिससे हर कोई बच कर निकलना चाहता है। दलितों का शोषण इतने लंबे समय से चला आ रहा है कि स्वयं दलितों ने भी कभी वर्ण व्यवस्था आदि का विरोध करने की हिमाकत नहीं की। यह तो भला हो आधुनिक चिंतकों और विचारकों का जिन्होंने दलितों की चेतना को झंकृत किया। बेचैन जी ने इस बात को स्पष्ट रूप से रेखांकित किया है कि– *"हमारे चमार-चूहड़ों की पूरी कौमें मृतप्राय बना दी गयी थीं। उनके साधन, सुविधाएँ, सम्मान रूपी प्राण तो वर्ण धर्म वाली व्यवस्था ने कब के खींच लिये थे। उसका इतिहास कहाँ है?"*[5] उक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि दलितों का या दलितों द्वारा कोई इतिहास नहीं लिखा गया। अगर उनकी त्रासदी की गाथा पूर्व में लिखी गई होती तो निश्चित रूप से दलितों के बीच बहुत पहले ही जागृति आ चुकी होती।

श्यौराज जी ने जिन यातनाओं को झेला कमोबेश लगभग सभी दलित उन स्थितियों को झेलते हैं। दलितों के जीवन का यथार्थ इतना विद्रूप और कुरूप है कि पांच–छह वर्ष के बालक को वहाॅ चोरी की ट्रेनिंग देने की कोशिश की जाती है ताकि उसका परिवार चल सके। कोई भी आदमी यह नहीं चाहता कि उसका बच्चा चोरी करे, हत्या करे, जेल जाए, फांसी चढ़े। अपने अस्तित्व को बचाने के लिए मजबूरी में दलितों को वह सब करना पड़ता है जिससे उन्हें दो वक्त की रोटी मिल सके। बेचैन जी के चाचा भी चाहते थे कि वे चोर बनें लेकिन उनकी माँ ने देवर द्वारा दिए गए प्रलोभन का पुरजोर विरोध किया। स्वयं बेचैन जी ने भी लिखा है– *"चमारों में चोरी, उठाईगिरी का धंधा नहीं होता था। सभी अपनी मेहनत की खाते–कमाते थे। सो मुझे भी मेहनत के रस्ते पर जाना था।"*[6] उक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि यद्यपि बेचैन जी के घर में एक सांझ की रोटी मयस्सर नहीं थी लेकिन बचपन से ही उन्होंने स्वाभिमानी जीवन जीने का संकल्प लिया था। यह महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि दलितों को हर स्तर पर शोषण का शिकार होना पड़ता है। गरीब दलित केवल ब्राह्मणवाद से पीड़ित नहीं हैं। दलितों में भी वे जो आर्थिक रूप से मजबूत होते हैं, वे गरीब दलितों का वैसा ही शोषण करते हैं जैसे तथाकथित ऊंची जाति के लोग करते हैं। बेचैन जी के नाना ने पहले अपनी विधवा बेटी को रामलाल के घर रखा, जब वहाॅ एक महीने के भीतर ही बात नहीं बनी तब फूफा के कहने पर भिकारी के यहां रख आए। स्वाभाविक है कि बेचैनजी के साथ सौतेले का व्यवहार होता था। उन्हें फूलचंद नाम के एक व्यक्ति ने 'लवारा' कहा, जिसके अर्थ को वे निम्नांकित ढंग से स्वयं व्याख्यायित करते हैं– *"मैं सौतेले बाप के घर आने के कारण इंसान की औलाद नहीं रह गया हूँ। मेरा शुमार पशुओं में है। मैं भैंस का ऐसा बच्चा हूँ जो उसके साथ आया हूँ।"*[7] ऐसी मर्मान्तक पीड़ा से जूझते हुए बेचैनजी स्वयं को संभाल ही रहे थे कि माँ ने भी उन्हें एक बात स्पष्ट कर दी कि *"कान खोल के सुन! तेरो बाप मरि चूको है। वो तेरी सुनन कूँ अब कबऊ लौटिके नाँय आवैगो समझे। मैं तेरी कोई जिद पूरी नाँय कर पाऊँगी। अब तोइ अपनी जिन्दगी अपनी कमाई में गुजारनी है। जिद्द छोड़, कछु काम सीख ले। कछु नाँय तो साइकिल में पिंचर जोड़नों ही सीख ले।"*[8] स्पष्ट है कि छुटपन में ही श्यौराज ने वह सब देख लिया जिसे देखने और महसूस करने में अन्य लोगों को तीस–चालीस वर्ष लगते हैं। पेट की आग शांत करने के लिए बेचैन जी ने सपरिवार 'ढड़ायण' खा लिया था जिसे विष से

भरपूर माना जाता है। बेचैन जी ने लिखा है– *"गर्म-गर्म ढ़ड़ाइन पेट में उतरी और हम में से जिसके शरीर में विष से लड़ने की प्रतिरोधी क्षमता जितनी कम थी, उतनी ही जल्दी वह होश खोने लगा था। एक-एक करके थोड़ी ही देर में हम चारों प्राणी जहाँ-तहाँ जमीन पर गिरे पड़े थे। वैसे भी घर में दूसरी खाट न होने के कारण हम सब अदल-बदल कर पताई बिछा कर जमीन पर सोते थे। मैं आँगन में पड़ा था। अम्माँ दूध पिलाते हुए तेजसिंह के साथ ही खाट पर धीरे-धीरे बेहोश होने लगी थी। 'माया' खाट के पास ही औंधे मुँह जमीन पर पड़ी थी।"*[9] उपर्युक्त पंक्तियों में यद्यपि एक दलित परिवार की मरणासन्न अवस्था का वर्णन किया गया है परंतु सच्चाई यह है कि ऐसी अवस्था से हर वह दलित गुजरता है जिसके पास सामाजिक–आर्थिक संसाधनों के नाम पर कुछ भी उपलब्ध नहीं है। 'मुर्दहिया', 'जूठन', 'सदियों का संताप', 'शिकंजे का दर्द', 'दोहरा अभिशाप' आदि में भी उक्त स्थिति से मिलती–जुलती स्थितियों का उल्लेख मिलता है।

विभीषिकाओं ने ही श्यौराज सिंह बेचैन को पाला और तराशा। दरअसल केवल श्यौराज को ही नहीं बल्कि हर दलित को विभीषिकाओं और विघ्नों के बीच रहने की आदत होती है। और वे ही उसे जीने की शक्ति देते हैं। अल्पायु में ही पिता की अर्थी उठाने वाले श्यौराज जब कुछ ही बड़े हुए तो अपने जीजा की भी अर्थी को कंधा देने के लिए विवश हुए। जिस उम्र में आज लड़कियों का विवाह नहीं होता उस उम्र में उनकी अपनी बहन विधवा हो गई। अपने जीजा को, पिता की ही तरह उन्होंने आंखों के सामने मरते देखा लेकिन वे कुछ भी नहीं कर सके। डॉक्टरों की लापरवाही ने उनकी बहन को विधवा बना दिया। ऐसी त्रासद अवस्था में जब वे अपने जीजा का शव जलाने गए तो शवदाह गृह में भी उनके और उनकी मां के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार किया गया। तथाकथित ऊंची जाति के लोग पहनावा–ओढ़ावा देख कर ही समझ गए कि बेचैन जी और उनकी माँ दलित परिवार से ताल्लुक रखते हैं इसी लिए उन्हें धक्के मार कर वहाँ से बाहर निकाल दिया गया। बेचैनजी ने इस संदर्भ में अपने रिश्ते के भाई डॉ. नत्थूलाल से कहा– *"हाँ, हम बाहर निकाल दिये गये हैं। हमारे शरीर जो उन जैसे साफ नहीं थे।"*[10] उक्त पंक्तियों में लेखक की जो वेदना छिपी हुई है उसे सहज ही महसूस किया जा सकता है। दलितों के साथ ऊँची जाति के हिन्दू किस प्रकार का व्यवहार करते हैं यह जगजाहिर है। बेचैनजी के साथ भी ऊँची जाति के हिन्दुओं ने कई मौकों पर मारपीट की। निम्नांकित पंक्तियों में जो वैमनस्य और द्वेष भरा है वह आज के समाज की हकीकत बयान करता है। *"हमारे कस्बा में रह कें हमारे मुखिया पै हाथ उठावैगो और हम राजपूत बदलो नाँय लिंगे? तैने ऐसी-कैसें सोच रखी? चमार की औलाद ! आज ही तोड़ हम जिंदौ जमीन में गाड़ि दिंगे। अब बुलाइ उन हिमायती कटल्लनु (मुसलमानों) कूँ बचाइलें तेरे अतीका और करमतुल्ला। कोई भंगी चमट्टा हूँ तेरौ हिमायती होइ तो उबाऊ टेर लै।"*[11] उपयुक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि तथाकथित ऊंची जाति के हिन्दू दलितों को मनुष्य की श्रेणी में ही नहीं रखते। वे उनका ऐसा दमन करना चाहते हैं जिससे दलितों की अगली कई पीढ़ियां सवर्णों का विरोध करने की हिम्मत न जुटा सकें।

महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि आत्मकथा के पहले खंड का जहां समापन हुआ है वहाँ पूरी दलित बिरादरी के लिए बेचैन जी ने एक मार्ग सुझाया है। जिस प्रकार डॉ. अंबेडकर ने कहा था कि 'शिक्षा शेरनी का वह दूध है, जो पियेगा वही दहाड़ेगा' ठीक उसी प्रकार बेचैन जी ने इस तथ्य को स्थापित किया है कि

अंधकार से भरपूर जीवन में प्रकाश लाने का केवल एक रास्ता है। और वह रास्ता है शिक्षा। यही तथ्य 'मुर्दहिया' और 'मणिकर्णिका' में डॉ. तुलसीराम ने भी स्थापित किया है। तमाम विषमताओं के बावजूद श्यौराज सिंह बेचैन ने द्वितीय श्रेणी के अंकों के साथ मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की और अपने आस–पड़ोस के सभी दलितों के लिए उम्मीद की एक नई किरण प्रज्ज्वलित की। उक्त दोनों ही लेखक दलित समाज के लिए प्रेरणास्रोत हैं।

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि श्यौराज सिंह बेचैन ने अपनी आत्मकथा के माध्यम से दलितों के जीवन की पीड़ा को आवाज दी है। अपने जीवन के वैसे कटु सत्यों को उन्होंने उद्घाटित किया है जो तथाकथित सभ्य समाज के मुंह पर जोरदार तमाचे से प्रतीत होते हैं। इक्कीसवीं सदी के इस वैज्ञानिक युग में भी समाज में जो दुर्भावना, घृणा और वैमनस्य व्याप्त है उसके जिम्मेदार जो लोग हैं उनकी पहचान को 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' में बैचेन जी ने उद्घाटित किया है। प्रगतिशील दलितों की लड़ाई कई स्तरों पर एक साथ जारी है। ऐसा नहीं है कि वे सिर्फ सामंतवादी, ब्राह्मणवाद ताकतों से ही लड़ रहे हैं बल्कि दलित जातियों में भी जो विभाजन और दुराव की परिस्थिति स्पष्ट रूप से नजर आती है, वे उसके निवारण के लिए भी अपने आंदोलन को धार देने की कोशिश में जुटे हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. बेचैन, श्यौराज सिंह, मेरा बचपन मेरे कंधों पर, वाणी प्रकाशन, संस्करण–2018, पृष्ठ–21
2. वही
3. वही, पृष्ठ–21
4. वही, पृष्ठ–31
5. वही
6. वही, पृष्ठ–38
7. वही, पृष्ठ–39
8. वही, पृष्ठ–40–41
9. वही, पृष्ठ–43
10. वही, पृष्ठ–128
11. वही, पृष्ठ–287